श्री सीताहरण और श्री सीता विलाप

*** सून बीच दसकंधर देखा। आवा निकट जती कें बेषा॥ जाकें डर सुर असुर डेराहीं। निसि न नीद दिन अन्न न खाहीं॥4॥

भावार्थ:- रावण सूना मौका देखकर यति (संन्यासी) के वेष में श्री सीताजी के समीप आया, जिसके डर से देवता और दैत्य तक इतना डरते हैं कि रात को नींद नहीं आती और दिन में (भरपेट) अन्न नहीं खाते-॥4॥

*** सो दससीस स्वान की नाईं। इत उत चितइ चला भड़िहाईं॥ इमि कुपंथ पग देत खगेसा। रह न तेज तन बुधि बल लेसा॥5॥

भावार्थ:- वही दस सिर वाला रावण कुत्ते की तरह इधर-उधर ताकता हुआ भड़िहाई

*** (चोरी) के लिए चला। (काकभुशुण्डिजी कहते हैं-) हे गरुड़जी! इस प्रकार कुमार्ग पर पैर रखते ही शरीर में तेज तथा बुद्धि एवं बल का लेश भी नहीं रह जाता॥5॥

*** सूना पाकर कुत्ता चुपके से बर्तन-भाँड़ों में मुँह डालकर कुछ चुरा ले जाता है। उसे 'भड़िहाई' कहते हैं।

*** नाना बिधि करि कथा सुहाई। राजनीति भय प्रीति देखाई॥ कह सीता सुनु जती गोसाईं। बोलेहु बचन दुष्ट की नाईं॥6॥

भावार्थ:- रावण ने अनेकों प्रकार की सुहावनी कथाएँ रचकर सीताजी को राजनीति, भय और प्रेम दिखलाया। सीताजी ने कहा- हे यति गोसाईं! सुनो, तुमने तो दुष्ट की तरह वचन कहे॥6।

*** तब रावन निज रूप देखावा। भई सभय जब नाम सुनावा॥ कह सीता धरि धीरजु गाढ़ा। आइ गयउ प्रभु रहु खल ठाढ़ा॥7॥

भावार्थ:- तब रावण ने अपना असली रूप दिखलाया और जब नाम सुनाया तब तो सीताजी भयभीत हो गईं। उन्होंने गहरा धीरज धरकर कहा- 'अरे दुष्ट! खड़ा तो रह, प्रभु आ गए'॥7॥

*** जिमि हरिबधुहि छुद्र सस चाहा। भएसि कालबस निसिचर नाहा॥ सुनत बचन दससीस रिसाना। मन महुँ चरन बंदि सुख माना॥8॥

भावार्थ:- जैसे सिंह की स्त्री को तुच्छ खरगोश चाहे, वैसे ही अरे राक्षसराज! तू (मेरी चाह करके) काल के वश हुआ है। ये वचन सुनते ही रावण को क्रोध आ गया, परन्तु मन में उसने सीताजी के चरणों की वंदना करके सुख माना॥8॥

दोहा :

*** क्रोधवंत तब रावन लीन्हिसि रथ बैठाइ। चला गगनपथ आतुर भयँ रथ हाँकि न जाइ॥28॥

भावार्थ:- फिर क्रोध में भरकर रावण ने सीताजी को रथ पर बैठा लिया और वह बड़ी उतावली के साथ आकाश मार्ग से चला, किन्तु डर के मारे उससे रथ हाँका नहीं जाता था॥28॥

चौपाई :

*** हा जग एक बीर रघुराया। केहिं अपराध बिसारेहु दाया॥ आरति हरन सरन सुखदायक। हा रघुकुल सरोज दिननायक॥1॥

भावार्थ:- (सीताजी विलाप कर रही थीं-) हा जगत के अद्‌वितीय वीर श्री रघुनाथजी! आपने किस अपराध से मुझ पर दया भुला दी। हे दुःखों के हरने वाले, हे शरणागत को सुख देने वाले, हा रघुकुल रूपी कमल के सूर्य!॥1॥

*** हा लछिमन तुम्हार नहिं दोसा। सो फलु पायउँ कीन्हेउँ रोसा॥ बिबिध बिलाप करति बैदेही। भूरि कृपा प्रभु दूरि सनेही॥2॥

भावार्थ:- हा लक्ष्मण! तुम्हारा दोष नहीं है। मैंने क्रोध किया, उसका फल पाया। श्री जानकीजी बहुत प्रकार से विलाप कर रही हैं- (हाय!) प्रभु की कृपा तो बहुत है, परन्तु वे स्नेही प्रभु बहुत दूर रह गए हैं॥2॥

*** बिपति मोरि को प्रभुहि सुनावा। पुरोडास चह रासभ खावा॥ सीता कै बिलाप सुनि भारी। भए चराचर जीव दुखारी॥3॥

भावार्थ:- प्रभु को मेरी यह विपत्ति कौन सुनावे? यज्ञ के अन्न को गदहा खाना चाहता है। सीताजी का भारी विलाप सुनकर जड़-चेतन सभी जीव दुःखी हो गए॥3॥ जटायु-रावण-युद्ध, अशोक वाटिका में सीताजी को रखना

*** गीधराज सुनि आरत बानी। रघुकुलतिलक नारि पहिचानी॥ अधम निसाचर लीन्हें जाई। जिमि मलेछ बस कपिला गाई॥4॥

भावार्थ:- गृध्रराज जटायु ने सीताजी की दुःखभरी वाणी सुनकर पहचान लिया कि ये रघुकुल तिलक श्री रामचन्द्रजी की पत्नी हैं। (उसने देखा कि) नीच राक्षस इनको (बुरी तरह) लिए जा रहा है, जैसे कपिला गाय म्लेच्छ के पाले पड़ गई हो॥4॥

*** सीते पुत्रि करसि जनि त्रासा। करिहउँ जातुधान कर नासा॥ धावा क्रोधवंत खग कैसें। छूटइ पबि परबत कहुँ जैसें॥5॥

भावार्थ:- (वह बोला-) हे सीते पुत्री! भय मत कर। मैं इस राक्षस का नाश करूँगा। (यह कहकर) वह पक्षी क्रोध में भरकर ऐसे दौड़ा, जैसे पर्वत की ओर वज्र छूटता हो॥5॥

*** रे रे दुष्ट ठाढ़ किन होही। निर्भय चलेसि न जानेहि मोही॥ आवत देखि कृतांत समाना। फिरि दसकंधर कर अनुमाना॥6॥

भावार्थ:- (उसने ललकारकर कहा-) रे रे दुष्ट! खड़ा क्यों नहीं होता? निडर होकर चल दिया! मुझे तूने नहीं जाना? उसको यमराज के समान आता हुआ देखकर रावण घूमकरमन में अनुमान करने लगा-॥6॥

*** की मैनाक कि खगपति होई। मम बल जान सहित पति सोई॥ जाना जरठ जटायू एहा। मम कर तीरथ छाँड़िहि देहा॥7॥

भावार्थ:- यह या तो मैनाक पर्वत है या पक्षियों का स्वामी गरुड़। पर वह (गरुड़) तो अपने स्वामी विष्णु सहित मेरे बल को जानता है! (कुछ पास आने पर) रावण ने उसे पहचान लिया (और बोला-) यह तो बूढ़ा जटायु है। यह मेरे हाथ रूपी तीर्थमें शरीर छोड़ेगा॥7॥

*** सुनत गीध क्रोधातुर धावा। कह सुनु रावन मोर सिखावा॥ तजि जानकिहि कुसल गृह जाहू। नाहिं त अस होइहि बहु बाहू॥8॥

भावार्थ:- यह सुनते ही गीध क्रोध में भरकर बड़े वेग से दौड़ा और बोला- रावण! मेरी सिखावन सुन। जानकीजी को छोड़कर कुशलपूर्वक अपने घर चला जा। नहीं तो हे बहुत भुजाओं वाले! ऐसा होगा कि-॥8॥

*** राम रोष पावक अति घोरा। होइहि सकल सलभ कुल तोरा॥ उतरु न देत दसानन जोधा। तबहिं गीध धावा करि क्रोधा॥9॥

भावार्थ:- श्री रामजी के क्रोध रूपी अत्यन्त भयानक अग्नि में तेरा सारा वंश पतिंगा (होकर भस्म) हो जाएगा। योद्धा रावण कुछ उत्तर नहीं देता। तब गीध क्रोध करके दौड़ा॥9॥

*** धरि कच बिरथ कीन्ह महि गिरा। सीतहि राखि गीध पुनि फिरा॥ चोचन्ह मारि बिदारेसि देही। दंड एक भइ मुरुछा तेही॥10॥

भावार्थ:- उसने (रावण के) बाल पकड़कर उसे रथ के नीचे उतार लिया, रावण पृथ्वी पर गिर पड़ा। गीध सीताजी को एक ओर बैठाकर फिर लौटा और चोंचों से मार-मारकर रावण के शरीर को विदीर्ण कर डाला। इससे उसे एक घड़ी के लिए मूर्च्छा हो गई॥10॥

*** तब सक्रोध निसिचर खिसिआना। काढ़ेसि परम कराल कृपाना॥ काटेसि पंख परा खग धरनी। सुमिरि राम करि अदभुत करनी॥11॥

भावार्थ:- तब खिसियाए हुए रावण ने क्रोधयुक्तहोकर अत्यन्त भयानक कटार निकाली और उससे जटायु के पंख काट डाले। पक्षी (जटायु) श्री रामजी की अद्भुत लीला का स्मरण करके पृथ्वी पर गिर पड़ा॥11॥

*** सीतहि जान चढ़ाइ बहोरी। चला उताइल त्रास न थोरी॥ करति बिलाप जाति नभ सीता। ब्याध बिबस जनु मृगी सभीता॥12॥

भावार्थ:- सीताजी को फिर रथ पर चढ़ाकर रावण बड़ी उतावली के साथ चला। उसे भय कम न था। सीताजी आकाश में विलाप करती हुई जा रही हैं। मानो व्याधे के वश में पड़ीहुई (जाल में फँसी हुई) कोई भयभीत हिरनी हो!॥12॥

*** गिरि पर बैठे कपिन्ह निहारी। कहि हरि नाम दीन्ह पट डारी॥ एहि बिधि सीतहि सो लै गयऊ। बन असोक महँ राखत भयऊ॥13॥

भावार्थ:- पर्वत पर बैठे हुए बंदरों को देखकर सीताजी ने हरिनाम लेकर वस्त्र डालदिया। इस प्रकार वह सीताजी को ले गया और उन्हें अशोक वन में जा रखा॥13॥

दोहा :

*** हारि परा खल बहु बिधि भय अरु प्रीति देखाइ। तब असोक पादप तर राखिसि जतन कराइ॥29 क॥

भावार्थ:- सीताजी को बहुत प्रकार से भय और प्रीति दिखलाकर जब वह दुष्ट हार गया, तब उन्हें यत्न कराके (सब व्यवस्था ठीक कराके) अशोक वृक्ष के नीचे रख दिया॥29 (क)॥ नवाह्नपारायण, छठा विश्राम